द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः समूलमुन्मूलयतीव मे मनः।

परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् ।।४१।।

अन्वय-

यत् इयं दशा द्विषन्निमित्ता ततः मे मनः समूलम् उन्मूलयति इव । परैः अपर्यासितवीर्यसम्पदां मानिनाम् पराभवः अपि उत्सव एव ॥४१॥

अर्थ-

आप की यह दुर्दशा शत्रु के कारण हुई है, इसलिए मेरा मन अत्यन्त क्षुब्ध-सा होता है । (वैसे) शत्रुओं द्वारा जिसके बल एवं पराक्रम का तिरस्कार नहीं हुआ है, ऐसे मनस्वियों का पराभव भी उत्साहवर्द्धक ही होता है ॥४१॥

टिप्पणी-

मानियों की विपदा बुरी नहीं है, उनकी मानहानि बुरी है। वहीं सब से बढ़कर असहनीय है।

यहाँ उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास अलंकारों की संसृष्टि हुई है।

विहाय शान्तिं नृप धाम तत्पुनः प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम् ।

व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः ॥४२॥

अन्वय-

नृप! शान्तिं विहाय विद्विषाम् वधाय तत् धाम पुनः सन्धेहि प्रसीद । निःस्पृहाः मुनयः शत्रून् अवधूय शमेन सिद्धिं व्रजन्ति भूभृतः न (व्रजन्ति)॥४२॥

अर्थ-

हे राजन् ! शान्ति को त्याग कर आप (अपने) उस तेज को शत्रुओं के विनाशार्थ पुनः प्राप्त करें तथा प्रसन्न हों । निःस्पृह मुनि लोग (ही) शत्रुओं (कामादि मनोविकारों) को तिरस्कृत करके शान्ति के द्वारा सिद्धि की प्राप्ति करते हैं, राजा लोग नहीं। ॥४२॥

टिप्पणी-

शान्ति द्वारा प्राप्त होने वाले मोक्षादि पदार्थों की भांति राजलक्ष्मी शान्ति मे नहीं प्राप्त होती, वह वीरभोग्या है । आपको तो अपने शत्रु का विनाश तेज पुनः धारण करना होगा । यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।